खाद्यान्न सुरक्षा, जलवायु परिवर्तन और जैव-ईंधन

आर.टी.गहूकर

व्यापक स्तर पर भूख से लोगों को बचाने के लिए यह ज़रूरी है कि कृषि के माध्यम से खाद्यान्न की ज़रूरत पूरी हो। किंतु दिन-ब-दिन खाद्यान्न सुरक्षा की हालत बिगड़ने के कारण दुनिया में भूखे और कुपोषित व्यक्तियों की संख्या बढ़ती जा रही है। इसका एक प्रमुख कारण विकासशील देशों की निरंतर बढ़ती आबादी भी है। आने वाले दिनों में होने वाले जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप प्राकृतिक विपदाओं (सूखा, बाढ़, जंगलों की आग, वर्षा की कमी-बेशी आदि) के कारण मनुष्य को उपलब्ध खाद्यान्न की मात्रा में कमी होगी और मानव जाति के अस्तित्व पर ही संकट आ जाएगा। इसके अलावा, यदि खाद्य फसलों का उपयोग जैव ईंधन उत्पादन के लिए किया जाने लगा तो पूरी कृषि प्रणाली में भारी बदलाव होंगे और प्राकृतिक संतुलन गड़बड़ा जाने के कारण खाद्यान्न उत्पादन में कमी आ जाएगी।

खाद्यान्न की पर्याप्तता को बढ़ावा देने के लिए हर वर्ष 16 अक्टूबर को विश्व खाद्य दिवस मनाया जाता है, किंतु इस क्षेत्र में कुछ बड़ी विश्वव्यापी चुनौतियां खड़ी हो गई हैं जिनका सामना करना ज़रूरी है। खाद्यान्न की पर्याप्तता का मतलब है कि सभी को सक्रिय और स्वस्थ जीवन के लिए पर्याप्त भोजन उपलब्ध हो। पर्याप्त पोषण हर व्यक्ति का मूलभूत अधिकार है। वर्तमान में भारत में खाद्यान्न की उपलब्धता की स्थिति काफी डांवाडोल है और यह भविष्य में कभी भी एक संकट का रूप ले सकती है क्योंकि आवश्यक मात्रा में खाद्यान्न उपलब्ध नहीं है और कुपोषित व्यक्तियों की संख्या हर वर्ष बढ़ती जा रही है। यदि किसी व्यक्ति को एक दिन में 9200 किलोजूल से कम भोजन मिले तो उसे कुपोषित माना जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य और कृषि संगठन की रिपोर्ट में कहा गया है कि विकासशील देशों में कुपोषित व्यक्तियों का प्रतिशत 1964-66 में 57 से घटकर 1997-99 में 10 रह गया था। किंतु अपर्याप्त उपलब्धता के चलते यदि खाद्यान्न की कीमतें बढ़ती रही तो विकासशील देश सबसे अधिक प्रभावित होंगे। इन देशों में कीमतों में हर 2-2.5 प्रतिशत की वृद्धि होने पर कुपोषित व्यक्तियों की संख्या 1 प्रतिशत बढ़ेगी। इसका प्रमुख कारण यह है कि आर्थिक वृद्धि के वर्तमान परिदृश्य में खाद्यान्न की बढ़ी हुई कीमतें लोगों की क्रयशक्ति से बाहर हो रही हैं। इसका मतलब यह होता है कि लोग अपनी आवश्यकता के अनुसार खाद्यान्न नहीं खरीद सकते हैं और इसके फलस्वरूप वे लम्बे समय तक भूखे रहते हैं। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र में 25 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा से नीचे रहती है, जबकि पंजाब में यह अनुपात केवल 5 प्रतिशत है। वास्तविकता यह है कि हम एक ऐसे दौर से गुज़र रहे हैं जिसमें खाद्यान्न की अधिकता की स्थिति न्यूनता में बदल रही है। अंतर्राष्ट्रीय खाद्यान्न नीति अनुसंधान संस्थान का अनुमान है कि 2025 तक चावल की मांग की पूर्ति के लिए इसके उत्पादन में 38 प्रतिशत की वृद्धि करनी होगी।

इन वैश्विक और स्थानीय समस्याओं का सामना करने के लिए हम क्या कर सकते हैं? पृथ्वी के जिस भाग पर बर्फ का आवरण नहीं है उसके 12 प्रतिशत भाग पर खेती होती है और इससे मानव जाति की 90 प्रतिशत खाद्यान्न आवश्यकता पूरी होती है। आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी (संकर बीज, रासायनिक खाद, कीटनाशक, कृषि यंत्र) की सहायता से पिछली सदी में खाद्यान्न उत्पादन में सात गुना वृद्धि हुई है।

हम एक ऐसे दौर से गुज़र रहे हैं जिसमें खाद्यान्न की अधिकता की स्थिति न्यूनता में बदल रही है। अंतर्राष्ट्रीय खाद्यान्न नीति अनुसंधान संस्थान का अनुमान है कि 2025 तक चावल की मांग की पूर्ति के लिए इसके उत्पादन में 38 प्रतिशत की वृद्धि करनी होगी।

भारत में हरित क्रांति की बदौलत खाद्यान्न उत्पादन में चार गुना वृद्धि हुई है। खाद्यान्न का उत्पादन 1950 में 5 करोड़ टन हुआ था। वह 2006 में बढ़कर 21.2 करोड़ टन हो गया। इसी प्रकार, हालांकि दुनिया की आबादी बढ़ कर चार गुना हो गई, हर व्यक्ति के लिए कृषि से प्राप्त खाद्यान्न की मात्रा दुगनी हो गई।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि पूरी दुनिया में खाद्यान्न का समान वितरण हो तो हर व्यक्ति को पर्याप्त पोषण मिल सकेगा। किंतु ऐसा हो नहीं रहा है। दुनिया की लगभग 10 प्रतिशत आबादी वर्तमान में कुपोषण की शिकार है। यदि खाद्यान्न में पर्याप्तता हासिल करना है तो खाद्यान्न उत्पादन को सन 2000 के स्तर से डेढ़ गुना करना होगा। ऐसा लगता है कि इस लक्ष्य को प्राप्त करना मुश्किल है क्योंकि खाद्यान्न का उत्पादन या तो स्थिर हो गया है या बहुत धीमी गति से बढ़ रहा है। पर्यावरण से सम्बंधित और सामाजिक-आर्थिक कई कारण इस धीमी गति के लिए ज़िम्मेदार हैं। मिट्टी, खाद और पौध-संरक्षण जैसे कारकों को भले ही मनुष्य नियंत्रित कर ले, किंतु जलवायु एक ऐसा महत्वपूर्ण कारक है जिस पर मनुष्य का नियंत्रण नहीं है। फसलों के वृद्धि काल में कमी होने, पानी की उपलब्धता में कमी होने आदि के कारण उपज कम होती है।

एक अनुमान के अनुसार मनुष्य जाति संसार के जैविक उत्पादन के 25 से 40 प्रतिशत का उपयोग अपने लिए कर लेती है। इसका विपरीत प्रभाव अन्य जीवधारियों पर पड़ता है। यह ज़रूरी है कि कृषि उत्पादन बढ़ाया जाए, किंतु यह भी उतना ही ज़रूरी है कि पर्यावरण पर पड़ने वाले कृषि के प्रभाव को संतुलित किया जाए। चूंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है, कृषि को एक समग्र दृष्टि से देखने की आवश्यकता है। केवल खाद्यान्न की ओर ही नहीं, अपितु अन्य प्रकार की फसलों जैसे रेशा फसलें, औषधीय फसलें, फलों की फसलें, डेयरी उत्पाद और अन्य अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बिकने वाले पदार्थों की ओर भी ध्यान देना ज़रूरी है क्योंकि अधिक आय का स्थाई स्रोत वे ही पदार्थ हो सकते हैं जिन्हें ग्राहक अधिक पसंद करते हैं। इसका मतलब है कि कृषि के वर्तमान ढांचे में बदलाव करके अधिक मूल्यवान पदार्थों का उत्पादन बढ़ाने की तुरंत आवश्यकता है।

एक अनुमान के अनुसार मनुष्य जाति संसार के जैविक उत्पादन के 25 से 40 प्रतिशत का उपयोग अपने लिए कर लेती है। इसका विपरीत प्रभाव अन्य जीवधारियों पर पड़ता है। यह ज़रूरी है कि कृषि उत्पादन बढ़ाया जाए, किंतु यह भी उतना ही ज़रूरी है कि पर्यावरण पर पड़ने वाले कृषि के प्रभाव को संतुलित किया जाए।

जलवायु परिवर्तन

मॉरिस स्ट्रॉग ने ठीक ही कहा है, "वह समय आ गया है जब हमें जलवायु परिवर्तन की समस्या को सर्वोच्च प्राथमिकता के आधार पर सुलझाने का प्रयास करना होगा। यह एक कठिन समस्या इसलिए है कि लोगों की विचारधारा को बदलना एक बहुत मुश्किल काम है और यह वर्तमान विचारधारा ही भविष्य में मानव के स्वस्थ जीवन के लिए खतरा बनी हुई है क्योंकि केवल जलवायु परिवर्तन ही नहीं, अन्य कई विश्वव्यापी समस्याएं इससे जुड़ी हुई हैं। कई हस्तक्षेप ऐसे होते हैं जिन्हें क्रियान्वित करने की समयावधि लम्बी होती है और किसी विपदा को रोकने के लिए जल्दी से जल्दी प्रयास शुरू करने की आवश्यकता होती है। जलवायु परिवर्तन ऐसी ही समस्या है और इसके हल के लिए प्रयास अतिशीघ्र शुरू करना ज़रूरी है।"

जलवायु परिवर्तन और कृषि के बीच एक करीबी सम्बंध है और आने वाली सदी में होने वाले जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप खाद्यान्न फसलों और भोजन की उपलब्धता पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि सन 2050 तक संसार के सारे ग्लेशियर समाप्त हो जाएंगे। इनकी बर्फ पिघलने से विनाशकारी बाढ़ आएगी और समुद्र के पानी का स्तर ऊपर उठेगा। बाढ़ के कारण फसलें नष्ट हो जाएंगी और सूखा प्रभावित भागों में

जंगलों में बार-बार आग लगती रहेगी। सिंचाई के लिए अधिक पानी की आवश्यकता होगी, कृषि भूमि बंजर हो जाएगी और अलग-अलग क्षेत्रों में वर्षा में उतार-चढ़ाव देखे जाएंगे। इन परिवर्तनों के कारण वर्तमान इकॉलॉजी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। उदाहरण के लिए, नील नदी की बाढ़ के साथ आने वाली गाद प्रति वर्ष मिस्र के सूखे इलाकों की ज़मीन पर बिछ जाती थी और रेगिस्तानी इलाकों की मिट्टी तक को उपजाऊ बना देती थी। भूमध्य सागर के बढ़ते जल स्तर के कारण भी उस क्षेत्र की वनस्पति और कृषि प्रभावित हुए हैं। कृषि प्रणालियों में बदलाव के कारण फसल चक्रों पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, ऊष्णकटिबंधीय प्रदेशों में जाड़ों में उतनी ठंड नहीं पड़ेगी जितनी रबी की फसलों के लिए ज़रूरी होती है। साथ ही, इन फसलों की सिंचाई करना असम्भव हो जाएगा। यह अनुमान लगाया गया है कि वैश्विक तपन (ग्लोबल वॉर्मिंग) के कारण सन 2020 तक नील नदी के डेल्टा की 15 प्रतिशत भूमि विपरीत रूप से प्रभावित होगी। दक्षिण एशिया में भी धान, मक्का और ज्वार जैसी कई खाद्यान्न फसलों में 10 प्रतिशत तक की कमी हो सकती है। जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा गठित समिति (आईपीसीसी) ने अनुमान लगाया है कि विकासशील देशों और कम विकसित देशों के सकल घरेलू उत्पाद में जलवायु परिवर्तन के कारण 1.4 से 3.0 प्रतिशत तक की कमी आ सकती है।

जलवायु परिवर्तन भारत को और भी गंभीर रूप से प्रभावित करेगा। तापमान में हर 2 डिग्री सेल्सियस की बढ़ोतरी के कारण सकल घरेलू उत्पाद में 5 प्रतिशत की कमी होती है। यदि तापमान की बढ़ोतरी 6 डिग्री सेल्सियस तक जाती है तो सकल घरेलू उत्पाद में कमी 15 से 16 प्रतिशत होगी। खाद्य एवं कृषि संगठन का अनुमान है कि भारत में कुल खाद्यान्न पैदावार में 12.5 करोड़ टन की कमी होगी। पिछले सात वर्षों में फरवरी-मार्च में अधिकतम तापमान में 3 डिग्री सेल्सियस की बढ़ोतरी होने के कारण हरियाणा में गेहूं का उत्पादन सन 2000-01 में 4106 किलोग्राम प्रति हैक्टर से घट कर 2003-04 में 3937 किलोग्राम प्रति हैक्टर रह गया है। इस प्रकार, जलवायु परिवर्तन का कृषि पर सीधा प्रभाव पड़ता है जिसके कारण खाद्यान्न की कमी हो जाती है, खाद और कीटनाशकों की अधिक आवश्यकता होती है, बोनी के समय में परिवर्तन करना पड़ता है, फसलों की किस्मों को बदलना पड़ता है, भूमि क्षरण अधिक होता है और फसलों का उत्पादन कम होता है। यह स्थिति आर्थिक रूप से कमज़ोर लोगों को अधिक प्रभावित करती है। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन के कारण पीड़कों, खरपतवारों और फसलों की बीमारियों में वृद्धि होगी।

आईपीसीसी ने भविष्यवाणी की है कि ग्रीनहाउस गैसों के कारण तापमान में 1.5 से 5.8 डिग्री सेल्सियस की बढ़ोतरी होगी और वर्षा में होने वाले बदलावों के कारण सन 2100 तक समुद्र के पानी का स्तर 15 से 95 से.मी. तक बढ़ जाएगा। तटवर्ती इलाकों में समुद्र का पानी घुसने के कारण वहां कृषि संभव नहीं रह जाएगी और वहां रहने वाले लोगों के लिए जीवनयापन मुश्किल हो जाएगा और उन्हें शहरों की ओर पलायन करना पड़ेगा। भारत में भारी और मध्यम उद्योगों की संख्या बढ़ने और शहरों की जनसंख्या में वृद्धि के कारण हवा, पानी और ज़मीन, इन तीनों संसाधनों पर बहुत अधिक दबाव बना है। कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, क्लोरोफ्लोरोकार्बन जैसी ग्रीनहाउस गैसों का अनुपात बेतहाशा बढ़ रहा है। वातावरण में मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड को बढ़ाने वाला प्रमुख कारक कृषि है। ये गैसें पृथ्वी की सतह से परावर्तित होने वाली ऊष्मा को रोक कर सोख लेती हैं जिसके फलस्वरूप पृथ्वी की सतह और वातावरण की निचली सतहों का तापमान बढ़ जाता है।

खाद्य एवं कृषि संगठन का अनुमान है कि भारत में कुल खाद्यान्न पैदावार में 12.5 करोड़ टन की कमी होगी। पिछले सात वर्षों में फरवरी-मार्च में अधिकतम तापमान में 3 डिग्री सेल्सियस की बढ़ोतरी होने के कारण हरियाणा में गेहूं की उपज में सन 4 प्रतिशत की कमी आई है।

आईपीसीसी के प्रतिवेदन के

अनुसार वातावरण के तापमान में 2 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि और वर्षा में 7 प्रतिशत की बढ़ोतरी होने पर कृषि से होने वाली आय में 8 प्रतिशत की गिरावट होगी। ऊष्णकटिबंधीय प्रदेशों में तापमान वृद्धि के कारण फसलों के उत्पादन में कमी होने की संभावना है। हिमालय में कम वर्षा होने के कारण पानी की उपलब्धता कम हो जाएगी। पुणे स्थित राष्ट्रीय जलवायु केन्द्र के अनुसार देश के प्रमुख खाद्यान्न उत्पादक क्षेत्रों में एक ओर तो जुलाई माह में होने वाली वर्षा में कमी हुई है वहीं अगस्त में होने वाली वर्षा में वृद्धि हुई है। वर्षा में एक अन्य प्रमुख बदलाव यह हुआ है कि देश के पूर्वी भाग में वर्षा कम होने लगी है और पश्चिमी भाग में अधिक। इसके साथ ही, एक समान वर्षा के स्थान पर कुछ क्षेत्रों में अधिक और कुछ क्षेत्रों में कम वर्षा होने लगी है जिसके फलस्वरूप बाढ़ अधिक आती है और खाद्यान्न का उत्पादन घट जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि लोगों को कम खाद्यान्न उपलब्ध हो पाता है।

जैव ऊर्जा की चुनौती

वर्तमान में संसार में प्रति दिन साढ़े आठ करोड़ बैरल खनिज तेल जलाया जा रहा है। सन 2011-12 तक केवल हाई स्पीड डीज़ल की मांग बढ़कर वर्तमान मांग से डेढ़ गुनी यानी 6.7 करोड़ टन हो जाएगी। वाहनों और कारखानों की बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए यह निश्चित है कि यह मांग और अधिक बढ़ेगी। अतः अब यह ज़रूरी हो गया है कि जैव ऊर्जा के ऐसे नए स्रोत ढूंढे जाएं जिनका नवीकरण किया जा सके। भारत में इस समस्या का एक हल यह हो सकता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचुरता से उपलब्ध कच्चे माल का उपयोग ऊर्जा उत्पादन के लिए किया जाए।

खनिज तेल की बढ़ती कीमत, उपलब्धता की अनिश्चितता और इससे होने वाले प्रदूषण के कारण पिछले वर्षों में इथेनॉल सबसे महत्वपूर्ण वैकल्पिक जैव ईंधन के रूप में उभरा है। इसे पेट्रोल के साथ मिला कर गैसोहोल बनाया जाता है जिसमें 35 प्रतिशत ऑक्सीजन होने के कारण ईंधन का पूरी तरह दहन हो जाता है और हानिकारक पदार्थों का उत्सर्जन कम होता है। भारत में सन 2003 में जैव ईंधन मिशन प्रारंभ किया गया था। सितम्बर 2008 में भारत सरकार ने जैव ईंधन नीति की घोषणा की जिसमें यह प्रस्तावित है कि 2017 तक खनिज तेलों में 20 प्रतिशत जैव ईंधन मिलाया जाएगा।

जैव ईंधन का उत्पादन रेपसीड, सोयाबीन, सूरजमुखी, करडी, मूंगफली, सरसों और पाम जैसे खाद्य तेलों से किया जाता है। दिक्कत यह है कि तेलों का उपयोग मानव उपभोग में भी किया जाता है और रेपसीड की खली का उपयोग पशु आहार में किया जाता है। मक्का, चुकंदर, गन्ना आदि ऐसी फसलें हैं जिनमें शर्करा होती है और जिनका उपयोग इथेनॉल के उत्पादन के लिए किया जा सकता है। किंतु ये प्रमुख कृषि फसलें भी हैं। यदि खाद्य फसलों का उपयोग जैव ऊर्जा के उत्पादन के लिए किया गया तो इनके मूल्य ईंधन के कच्चे माल के रूप में निर्धारित होंगे, न कि मानव या पशु आहार के रूप में।

वर्तमान में भारत में जैव ईंधन के उत्पादन पर काफी ज़ोर दिया जा रहा है और इसके कारण खाद्यान्न के उत्पादन के लिए खतरा पैदा हो सकता है। हो सकता है कि हमें खाद्यान्न का आयात ऊंची दरों पर करना पड़े और इसका नतीजा यह हो कि मानवीय आधार पर मदद पहुंचाने के लिए कम खाद्यान्न उपलब्ध हो। इस प्रकार, भूख के खिलाफ लड़ाई केवल गरीबी हटाने और खाद्यान्न के समान वितरण का मामला नहीं रह जाता है, बल्कि देश की खाद्यान्न सुरक्षा का महत्वपूर्ण बिंदु बन जाता है क्योंकि खाद्यान्न के उत्पादन में वृद्धि की संभावना बहुत धूमिल है।

यदि खाद्य फसलों का उपयोग जैव ऊर्जा के उत्पादन के लिए किया गया तो इनके मूल्य ईंधन के कच्चे माल के रूप में निर्धारित होंगे, न कि मानव या पशु आहार के रूप में। हो सकता है कि हमें खाद्यान्न का आयात ऊंची दरों पर करना पड़े

भारत में अखाद्य तेलों के स्रोत के रूप में दो वृक्षों - रतनजोत और करंज - का चयन जैव ईंधन के उत्पादन के लिए किया गया है।

यदि रतनजोत का रोपण बड़े पैमाने पर किया जाता है तो जंगलों की जैव विविधता कम होगी क्योंकि अधिकांश पड़ती भूमि पर इसे लगाया जाएगा। ऐसी स्थिति में करंज एक बेहतर विकल्प है क्योंकि यह इसके साथ लगाई गई किसी अन्य फसल को दबाता नहीं है और इसकी जड़ों में पाई जाने वाली ग्रंथियों में रहने वाले बैक्टीरिया हवा से नाइट्रोजन ले कर उसे नाइट्रेट में बदल देते हैं। इस प्रक्रिया से ज़मीन अधिक उपजाऊ बनती है। बंजर जमीन पर भी करंज की अच्छी वृद्धि होती है, इस वृक्ष में कार्बन का भंडारण करने की काफी क्षमता होती है, इसमें ऐसे रसायन नहीं होते जो अन्य वनस्पतियों या जंतुओं पर विपरीत प्रभाव डालें और इसके बीजों में 30-40 प्रतिशत तेल होता है जिसे जैव डीज़ल में बदला जा सकता है।

यह ज़रूरी है कि खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाया जाए, किंतु उसकी गुणवत्ता और पर्यावरण पर उसके प्रभाव को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। खाद्यान्न सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए यह ज़रूरी है कि मात्रा और गुणवत्ता के बीच संतुलन का निर्धारण अभी से कर लिया जाए

निष्कर्ष

इसमें कोई शक नहीं है कि बदलते तापमान और वर्षा के बदलते ढांचे और बढ़ते कार्बन डाइऑक्साइड स्तर के कारण विश्व की कृषि और खाद्यान्न सुरक्षा पर दूरगामी असर होंगे। यदि कृषि उत्पादन को उच्चतम स्तर पर बनाए रखना है तो यह ज़रूरी होगा कि जलवायु परिवर्तन के कृषि पर पड़ने वाले प्रभाव का आकलन करके कृषि में समग्र बदलाव किए जाएं। आईपीसीसी और खाद्य एवं कृषि संगठन जलवायु परिवर्तन और खाद्यान्न की उपलब्धता का अध्ययन कर रहे हैं। कृषि और सामाजिक-आर्थिक मॉडल्स के आधार पर वे संभवतया यह अनुमान कर सकेंगे कि आने वाले दिनों में अकाल और खाद्यान्न की कमी होगी या नहीं।

जलवायु के रुझानों और वास्तविक कृषि उत्पादन के बीच सम्बंध पर आधारित भू-सांख्यिकीय मॉडल्स और नियंत्रित परिस्थितियों में किए गए प्रयोगों के परिणामों की पूरी तरह पुष्टि नहीं हो पाई है। इसका कारण यह है कि वातावरण में अधिक कार्बन डाइऑक्साइड होने से तो फसल की वृद्धि अधिक होती है, किंतु बढ़ते तापक्रम के प्रभाव के बारे में पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। इसी प्रकार, तापक्रम और वानस्पतिक नाइट्रोजन के आपसी सम्बंध का श्वसन पर क्या असर होगा, इसके बारे में भी पूरी तरह स्पष्टता नहीं हो पाई है। ये अध्ययन तुरंत किए जाने चाहिए क्योंकि खाद्यान्न की मांग और आपूर्ति के बीच का संतुलन अधिकता से न्यूनता की ओर अचानक झुक गया है। यह ज़रूरी है कि खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाया जाए, किंतु उसकी गुणवत्ता और पर्यावरण पर उसके प्रभाव को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। खाद्यान्न सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए यह ज़रूरी है कि मात्रा और गुणवत्ता के बीच संतुलन का निर्धारण अभी से कर लिया जाए और इसकी झलक कृषि और खाद्यान्न के बारे में शासकीय नीतियों में भी दिखाई दे।

आईपीसीसी के अनुसार अगले दशक में भारत सौर ऊर्जा के क्षेत्र में अग्रणी बन सकता है और दुनिया को वैश्विक तपन से बचने की राह दिखा सकता है। यदि ऐसा हुआ तो देश को महंगे खनिज तेल के आयात से छुटकारा मिल जाएगा और वह ऊर्जा के क्षेत्र में पराश्रित नहीं रहेगा। शैवाल जैसे ऊर्जा के अन्य स्रोत भी भविष्य में उपलब्ध हो सकते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत सजिल्द

स्रोत के पिछले अंक

एक वर्ष सजिल्द रुपए 200.00। डाक खर्च रुपए 25.00 अतिरिक्त ।